IJARSCT

ISSN (Online) 2581-9429

International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)

IJARSCT
Impact Factor: 6.252

Volume 2, Issue 1, October 2022

मार्कण्डेय के कथा साहित्य में ग्रामीण चेतना : राजनीतिक एवं आर्थिक परिप्रेक्ष्य में

Dr. Jay Prakesh Yadav[1] and Sunil Kumar Yadav[2]
Research Supervisor and Associate Professor[1]
Research Scholar, Department of Hindi[2]
Multani Mal Modi (PG) College, Modinagar, Ghaziabad, Uttar Pradesh, India[1]
Chaudhary Charan Singh University, Meerut, Uttar Pradesh, India[2]

शोध सारांश :

भारत देश की 75 प्रतिशत आबादी गाँवों में बसती है, इसलिये हमारे यहाँ की असली जीवन–शैली एवं संस्कृति के दर्शन गाँव में ही मिलते हैं। परिस्थिति वश ही सही लेकिन गाँव और शहर की जीवन–शैली में जमीन आसमान का अंतर होता है, और हमारे अर्थव्यवस्था की रीढ़ कृषि ही है जो कि मात्र गाँव में ही संभव है, **''भारतीय जीवन का अर्थावलम्बन कृषि पर हैं या यों कहिए कि भारत कृषि प्रधान देश है तथा कृषि का विस्तृत स्वरूप हमें ग्राम्य जीवन में ही परिलक्षित होता है।** ग्रामीण जीवन की आर्थिक परिस्थितियाँ केवल कृषि एवं कुटीर धंधों पर ही निर्भर है, कोई फसल उगाता है, तो कोई लुहार है, तो कोई मोची, तो कोई बढ़ई, तो कोई जुलाहा, तो कोई कुम्हार है, तो कोई बाँस के बरतन बनाता है, सब अपनी रोजी–रोटी की व्यवस्था बनाने के लिये छोटे–छोटे काम करते हैं। इन सबके बावजूद भी ये स्वयं और परिवार का पेट पालने में पूरी तरह से समर्थ नहीं हो पाते हैं, और अपना जीवन निर्धनता एवं लाचारी के साथ व्यतीत करते हैं।

मुख्य शब्द : मार्कण्डेय, कथा, साहित्य, ग्रामीण, चेतना, राजनीतिक, आर्थिक, परिप्रेक्ष्य, भारत, जीवन, कृषि आदि।

प्रस्तावना :

स्वतंत्रता के बाद देश–विभाजन के पश्चात् भारत की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों में बहुत सारे बदलाव आये, लेकिन यदि किसी में सुधार नहीं आया तो वह है ग्रामीण जीवन की आर्थिक स्थिति, वहाँ की गरीबी और बेरोजगारी में कुछ नहीं बदला। आज भी गाँव वाले अपना जीवन अभाव में ही व्यतीत करते हैं। रोटी, कपड़ा और मकान जैसी बुनियादी जरूरतों के लिये वो अभी भी तरसते हैं। चारों तरफ निर्धनता और बेरोजगारी फैली है। आजादी के पहले हमारे गाँव इकाई के रूप में रहते थे, भारत में जो भी आर्थिक फायदा होता था वह अँग्रेजी सरकार को ही होता था क्योंकि अँग्रेज भारत की उन्नति नहीं अवनति ही चाहते थे। भारत में जो भी अच्छे कार्य हुए हैं वो उनसे अनजाने में ही सही लेकिन उनसे कुछ अच्छे काम

तो हुए हैं। हालांकि स्वातंत्र्योत्तर पश्चात् सरकारों ने भारत के ग्रामीण परिवेश में समुचित ध्यान देने का प्रयत्न तो किया है।

किसी भी देश की उन्नति तभी संभव है, जब उसके गाँव प्रगति करेंगे, जहाँ का ग्रामीण परिवेश ही पिछड़ा हो वहाँ की प्रगति तो असंभव है। भारत में गाँव देश का केन्द्र बिंदु है। जो किसान अन्नदाता बनकर सारे देश को भोजन देता है उसे हीं पेट भर भोजन नसीब नहीं होता है। सबके लिये वस्त्र बनाने वाले को पूरी तरह शरीर ढकने को वस्त्र नहीं मिल पाते, सबके सिर पर छत देने वाले को खुद के लिये झोपड़ी भी नहीं मिलती। यही हमारे देश का दुर्भाग्य है कि वह उत्पादक तो है किंतु उपभोक्ता नहीं। उपभोग करते हैं हमारे यहाँ के उच्च पदों पर बैठे हुए अधिकारी, बड़े–बड़े राजनेता, जागीरदार, साहूकार, एवं व्यापारी वर्ग।

मार्क्सवादी विचारधारा कहती है कि समाज का बदलाव तभी होगा जब आर्थिक परिस्थितियों में बदलाव होगा। और यही दृष्टिकोण मार्कण्डेय का भी है, जिससे उनकी कहानियों में मार्क्सवाद का प्रभाव दिखता है। इस बारे में विद्याधर शुक्ला कहते हैं कि, **"ग्रामीण जीवन की वास्तविकताओं के पीछे मार्कण्डेय का एक विशिष्ट राजनैतिक सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण है। जिससे उनकी वामपंथी पक्षधरता स्पष्ट होती है।**

लेकिन वह उक्त विचारधारा को अपनी कहानियों में थोपते नहीं है, बल्कि उसकी वास्तविकता को अपनी कहानियों के धरातल में प्रस्तुत करते हैं। अपने एक साक्षात्कार में मार्कण्डेय कहते हैं कि, **"मार्क्सवाद कहानी में विचारधारा की माँग नहीं करता बल्कि वह जीवन के यथार्थ के चित्रण की मांग करता है। जिस तरह की सामाजिक परिस्थितियाँ हों उनमें सामाजिक जीवन के परिवर्तन की आकांक्षा को आधार देने वाली कहानियाँ लिखीं जाती हैं तो वे सही मार्क्सवादी कहानियाँ हैं।**

मार्कण्डेय की कहानियों में उनकी ग्रामीण चेतना और समाज के प्रति उनका दृष्टिकोण ही उनका प्रेरणा स्त्रोत था। समाज के हर वर्ग में आपसी अंतर्विरोध से पीड़ित एवं विभक्त सारे गाँवों की परिस्थिति उनकी कहानियों में चित्रित है। इसीलिये कहा जाता है, **"मार्कण्डेय की कहानियों में ग्रामीण जीवन का निम्नवर्गीय प्रतिनिधित्व अत्यधिक व्यापक पैमाने पर हुआ है। 'पान–फूल' के बाद वे लगातार इस दृष्टि से सतर्क रहे हैं, 'पान–फूल' तक उनमें एक आदर्शवादी सह–अस्तित्व की कल्पना है, ठाकुरों और परजों को साथ बैठते देखकर एक प्रकार की खुशी भी, लेकिन बाद की कहानियों में उनकी निगाह सह–अस्तित्व से हटकर सीधे वर्गीय समाज के अंतर्विरोधों पर टिकती है।**

हम देखते हैं कि स्वातंत्र्योत्तर पश्चात् देश में एक नई उम्मीद का जन्म लेना जायज था, क्योंकि सदियों बाद गुलामी की जंजीरों से हमें स्वतंत्रता प्राप्त हुई थी और खुद को रचने का एक सुअवसर मिला था। और यह प्रत्येक भारतवासी के लिये गौरव का क्षण था, क्योंकि पहले ही वह निर्धनता और लाचारी से जूझ रहा था। निर्धन देश की गुलामी के वातावरण में अपनी क्षुधा व जीवन में व्याप्त बेबसी से मर रहा था। तो स्वाधीनता मिलने के बाद उसकी अंतरात्मा में उम्मीद का दिया जलना तो स्वाभाविक ही था।

स्वतंत्रता के पहले जब स्वतंत्रता आंदोलन चल रहा था, तो भारतवासियों को लगता था कि आजादी मिलने के बाद उनकी जीवनशैली में बदलाव अवश्य आएगा और उनके जीवन की कठिनाईयाँ कम हो जाएंगी, लेकिन ये कम होने की बजाय बढ़ गईं हैं। दिवास्वप्न समाप्त होने का एक नया क्रम शुरू हो गया है। आज हमारे देश में भ्रष्टाचार, मँहगाई, कालाबाजारी, निर्धनता, बेरोजगारी, अनैतिकता आदि कारणों से देश आर्थिक तंगी से लगातार जूझता रहा है, और इन्हीं सारे पहलुओं को मार्कण्डेय ने अपनी कहानियों का विषय बना कर उनकी समस्याओं को हल करने की कोशिश की है।

हमारा देश भारत स्वातंत्र्योत्तर पश्चात् गरीबी और दरिद्रता से जूझ रहा था, यहाँ प्रति व्यक्ति आय दूसरे देशों की अपेक्षा बहुत ही कम है। इसी वजह से प्रत्येक देशवासी को पेट भर भोजन नहीं प्राप्त हो पाता है, जो कि उनका अधिकार है। आज भी हमारे ग्रामीण जीवन में गरीबी ज्यादा है, जिससे वो अपनी बुनियादी आवश्यकताएँ पूर्ण नहीं कर पाते हैं। पारंपरिक खेती, प्राकृतिक विपत्तियाँ, रूढ़िवादी मान्यताएँ और अंधविश्वास, अज्ञानता, शिक्षा विहीन समाज, बारिश की अनियमितता, आदि कारणों से ग्रामीण परिवेश गरीबी से ऊपर नहीं उठ पा रहा है। और इसी निर्धनता के कारण देश का सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास संभव नहीं हो पाता है, और हम पीछे हो जाते हैं।

'सेमल का फूल' नामक उपन्यास का मुख्य पात्र सुमंगल अपने गाँव वालों की भुखमरी से बहुत द्रवित होता है। वो कहता है, **"लोग भूखों मर रहे हैं। बड़ी तकलीफ है चाची, लोगों को और हम स्थितियों को ठीक से देख नहीं पाते हैं।**

जमीन प्रकृति का एक हिस्सा होती है, और गाँवों में तो यही आमदनी का जरिया होता है। यदि फसल अच्छी नहीं होती है, तो किसान और मजदूर का जीवन साल भर गरीबी में ही बीतता है, मार्कण्डेय की कहानियों में ग्रामीण परिवेश की इन समस्याओं का चित्रण सही तरीके से हुआ है। 'नौ सौ रूपये और एक ऊँट दाना' कहानी में बचुनवाँ जब गाँव वापस आता है, तो उसे बारह आना किसी को देना होता है, लेकिन उसके पास दस रूपये होते हैं, उसके पास खुल्ले नहीं होते हैं, वह खुल्ले लेने के लिये छब्बू बरई और मोहन साव के यहाँ से बचुनवाँ लौट आया, पर उसे खुल्ले नहीं मिले। **"लगन के दिन हैं न, बचवा ! बड़ा कमाल बाड़े सौ। कहने के बड़े मनई हैं, खोज आओ तो एक फुटहा पइसा भी न निकली ठकुराने में।** थोड़ी देर सोचने के बाद वह उसे पनारू पंडित के पास उसे जाने को कहता है, किंतु वहाँ भी उसे खुल्ले नहीं मिलते हैं।

इसी तरह **'जूते'** में भी गरीबी का बड़ा मर्मस्पर्शी वर्णन किया गया है। इस कहानी में मनोहर नाम का बालक जो कि ठकुराइन के यहाँ नौकर है, उस बालक का जूते विहीन होना एवं जूते के प्रति उसकी लालसा का वर्णन किया गया है, जो कि अधिकतर गरीबों की आशाओं का प्रतीक बन जाता है।

इसी तरह 'अग्निबीज' में भी सागर एवं मुराद एकदम निर्धनता में व्यतीत करने वाले नवयुवक है। जन्म से ही दोनों ने निर्धनता से ग्रस्त हैं। यही हाल इनके घरवालों का भी है, **"गिनती की रोटियाँ जो जिसके**

IJARSCT

ISSN (Online) 2581-9429

International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)

Volume 2, Issue 1, October 2022

Impact Factor: 6.252

हिस्से में पड़ती एक ही बार में मिल जाती थीं। दो लिट्टियों का पिसान होता तो चार में से से हर को आधी ही खाकर पानी पी लेना, एक नियम सा बन गया था।

ऋण किसी भी व्यक्ति की जिंदगी में लगा वह दीमक है जो उसकी जिंदगी को अंदर से खोखला कर देती हैं। हमारे देश में कर्ज देना एक पारंपरिक व्यवसाय है, ग्रामीण परिवेश में तो कर्ज लेना आम बात है। स्वतंत्रता पूर्व से ही कर्जदारी की समस्या पूरे देश में अपना फन फैला चुकी है, हमारे गाँवों के लोग हमेशा समाज में अपनी इज्जत को ज्यादा महत्व देते हैं, इसी कारण से वह धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक उत्सव में अपनी मर्यादा को बरकरार रखने के लिये कर्ज लेता है, जो कि गाँव के सेठ–महाजन या जमींदार देते हैं। वह ब्याज पर कर्ज लेता है, और जब वह कर्ज की नहीं चुका पाता है तो इसके लिये वह अपनी संपत्ति गहन रखता है, और कभी–कभी तो वह उसकी घर–जमीन हाथ से भी चली जाती है।

मार्कण्डेय की कहानी 'मुंशीजी' में मुंशीजी एक शौकीन व्यक्ति हैं, जब उनके पिताजी की मौत हो जाती है तो उनके पास दाह–संस्कार एवं तेरहवीं के लिये एक दमड़ी उनके हाथ में नहीं होती है, तो वे जमींदार से कर्ज लेते हैं, **''बाप की बात है, तेरही तो धूम–धाम से होनी ही चाहिए.....मुंशीजी ने अपने चारों तरफ देखा, जमींदार से बातें की, पर कोई रूपये देने को तैयार न हुआ। अंत में सारी जगह–जमीन लिखकर रूपया आया और काम–किरिया बड़ी धूम–धाम से बीती।**

ऋण लेने की समस्या के कारण गाँव के गरीब मजदूर एवं किसान हमेशा गाँव के संपन्न लोगों के सामने झुकने को विवश रहते हैं, पिता का लिया कर्ज उसकी संतान एवं आने वाली पीढ़ी तक चुकाती है। कहानी 'बीच के लोग' में बुझावन कहता है कि, **''लोग तो बाप–दादा तक का करजा भरते चले आ रहे हैं। यह फउदी दादा का बचपन का मजूर और क्या है। साल–साल हिसाब करके बियाज में से पइसा काटने पर भी कुछ मूल में जुड़ता जाता है। अगली कितनी पीढ़ियों तक यह करजा चलेगा, कौन जानता है, लेकिन लोग भर रहे हैं।**

इस तरह से हम देखते हैं कि ऋण की वजह से कई पीढ़ियाँ नष्ट हो जाती हैं, गाँव के रसूखदार कर्जदाताओं के कारण ऋणग्रस्त लोग उनके अत्याचार के खिलाफ कुछ नहीं कह पाते हैं, अतः वो मनचाहा ऋण वसूलते हैं।

मार्कण्डेय की एक अन्य कहानी **'बादलों का टुकड़ा'** में जसमा का कुनबा भी ऋण के भार के तले दबा है। एक तो अकाल की वजह से वैसे भी गाँव में कोई मजदूरी करने को भी नहीं पूछता है, और ऊपर से साहूकार रात–दिन कर्जा भरने के लिये दबाब डालता है। और पूँजी के नाम पर जसमा के पास केवल एक बकरी होती है, और उसे भी साहूकार का आदमी ले जाता है। इस तरह कर्ज लेने के कारण गाँव वालों का उत्पीड़न होता है। मार्कण्डेय ने अपनी कहानियों में गाँव के गिरते आर्थिक एवं सामाजिक स्तर का मुद्दा उठाया है।

नशाखोरी भी गाँव की गिरती अर्थव्यवस्था का एक मुख्य कारण है। मनुष्य के मन पर सुख और दुख बहुत गहरा प्रभाव डालते हैं, दुख का प्रभाव मनुष्य की अंतरात्मा पर भी पड़ता है, इसके कारण उसे मानसिक और शारीरिक पीड़ा पहुँचती है। इस दुख को भुलाने के प्रयास में वह नशे का सहारा लेता है, इसमें चरस, गाँजा, अफीम, मदिरा, बीड़ी–सिगरेट, भाँग, तंबाकू आदि शामिल हैं। इन सबमें मदिरा का प्रयोग सबसे ज्यादा होता है, क्योंकि उसे पीने से इंसान बहुत जल्दी उत्तेजित होता है। कुछ पलों के उन्माद के कारण लोग नशे की गिरफ्त में आ जाते हैं, और यह नशे की लत ही उनकी आर्थिक एवं सामाजिक पतन का कारण बन जाती है।

कहानी **'रामलाल'** में रामलाल की भावज उसके और अपनी पुत्रवधू के बीच अवैध संबंध होने की शंका करती है। वह उसे हमेशा शंका भरी नजरों से देखती है, और अपने बहू के ऊपर चरित्रहीनता का कलंक लगा कर उसे बदनाम भी कर देती है। धीरे ही सही लेकिन यह अफवाह सारे गाँव में प्रसारित हो जाती है, ओर सब रामलाल को हेय दृष्टि से देखने लगते हैं। वह अपनी सफाई देता रहता है और कोई उसकी बात पर विश्वास नहीं करता है, और कहीं भी अपना दर्द बयाँ नहीं कर पाता है, अतः वह अपना दर्द भुलाने के प्रयास में शराब का सहारा लेता है, **''और जग्गी ने उस दिन रामलाल को अपने घर ले जाकर खूब शराब पिलायी। थोड़ी देर बाद जब रामलाल के ऊपर नशे का पूरा प्रभाव हुआ तो उसकी गहरी काली बुझती आँखें खुर्च हो गईं। उसके पाँव थरथराने लगे और होंठों पर एक भारी वजन–सा महसूस होने लगा।** नशे मे वह अपनी पीड़ा को जग्गी के सामने रखता है, कुछ ही पलों के लिये ही सही लेकिन उसे सुकून मिलता है, लेकिन नशे से बाहर आने के बाद उसका मन घृणा से भर जाता है।

'संगीत, आँसू और इन्सान' कहानी में भी बरकत सोना के साथ रेलगाड़ी में भीख माँगता है, और रात को सब पैसे ले जाकर शराब पीने लगता है, **''बरकत रूपया बैंक में जमा नहीं करता है, न तो सोना के लिये चमकीली साड़ियाँ खरीदता है।** इससे यह साफ–साफ पता चलता है कि एक भीख माँगने वाला भी कुछ पैसे पाते ही शराब पीने चल देता हैं। यही नशे की आदत मनुष्य की प्रगति में रोड़ा डालती है।

'मुंशीजी' कहानी में मुंशीजी अपने शाही तौर–तरीकों के चक्कर में पड़कर अपने बुढ़ापे में गरीब हो जाते हैं, उनके पिता ने बहुत संपत्ति बनाई थी, लेकिन मुंशी जी अपने नशे की लत और शाही खर्चे के कारण कर्ज में डूबकर अपनी संपत्ति एक–एक करके बेचते चले गये, **''भीतर–भीतर महाजनों का तकाजा भी होने लगा और धमकी भी। धीरे–धीरे वह दिन आ गया कि लोग मुंशीजी को देखकर घर में घुसने लगे.....। घर में फाँके होने लगे। लड़के–बच्चे आवारा घूमने लगे।** इस तरह नशे की लत इंसान को किस प्रकार राजा से रंक बना देती है, मार्कण्डेय ने अपनी कहानियों के द्वारा वर्णित किया है।

ग्रामीण परिवेश में नशाखोरी की लत मनुष्य की सामाजिक, आर्थिक शारीरिक, नैतिक स्थिति को नुकसान पहुँचाती है, नशाखोरी समाज में फैली ऐसी बीमारी है जिसका खात्मा किये बिना देश की प्रगति संभव ही नहीं है।

शोध निष्कर्ष :–

इन सभी कहानियों का अध्ययन करने के बाद यह समझ में आता है कि जिस लक्ष्य को लेकर पंचायती–राज का गठन किया गया था, वह पूरी तरह सफल नहीं हुआ है। आज भी ग्रामीण परिवेश के गरीब और पिछड़े लोगों का कोई हित नहीं हुआ है, उन्हें कहीं भी समानता नहीं प्राप्त हुई है, नही आर्थिक रूप से और न ही राजनैतिक लाभ हुआ है। बल्कि इस सबका लाभ भी उच्च एवं संपन्न लोगों को ही हुआ है। परिणामस्वरूप ग्रामीण परिवेश के लोगों की स्थिति में आज भी कुछ खास बदलाव नहीं हुए हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

[1]. 'प्रेमचंद का कहानी–दर्शन', डॉ0 कमल किशोर गोयनका, अनिल प्रकाशन, दिल्ली, 2014 पृष्ठ 30
[2]. 'मार्कण्डेय : परंपरा और विकास', भूमिका, संपादक प्रकाश त्रिपाठी, वचन पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 2010 पृष्ठ 235
[3]. 'परिवर्तित मुद्राओं के साथ–'बीच के लोग', चन्द्रभूषण तिवारी, संपादकीय समीक्षा, 'वाम', अंक–1, पृष्ठ 4
[4]. 'सेमल का फूल', अग्निबीज, पृष्ठ 44
[5]. 'नौ सौ रूपये और एक ऊँट दाना', मार्कण्डेय की कहानियाँ, मार्कण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002 पृष्ठ 106
[6]. 'अग्निबीज', मार्कण्डेय, पृष्ठ 31
[7]. 'मुंशीजी', मार्कण्डेय की कहानियाँ, मार्कण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002 पृष्ठ 66
[8]. 'बीच के लोग', मार्कण्डेय की कहानियाँ, मार्कण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002 पृष्ठ 482
[9]. 'रामलाल', मार्कण्डेय की कहानियाँ, मार्कण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002 पृष्ठ 52
[10]. 'संगीत, आँसू और इन्सान', मार्कण्डेय की कहानियाँ, मार्कण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002 पृष्ठ 59
[11]. 'मुंशीजी', मार्कण्डेय की कहानियाँ, मार्कण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002 पृष्ठ 67
[12]. 'बातचीत', मार्कण्डेय की कहानियाँ, मार्कण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002 पृष्ठ 238
[13]. 'दाना–भूसा', मार्कण्डेय की कहानियाँ, मार्कण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002 पृष्ठ 206
[14]. 'मधुपुर के सिवान का एक कोना', मार्कण्डेय की कहानियाँ, मार्कण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002, पृष्ठ 425
[15]. 'चाँद का टुकड़ा', मार्कण्डेय की कहानियाँ, मार्कण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002 पृष्ठ 226

[16]. 'नौ सौ रूपये और एक ऊँट दाना', मार्कण्डेय की कहानियाँ, मार्कण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002 पृष्ठ 113
[17]. रामदरश मिश्रा के कथा साहित्य में ग्राम्य जीवन, डॉ. वी.पी. चौहान, चिंतन प्रकाशन, कानपुर, 2004, पृष्ठ 134
[18]. 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना', डॉ. ज्ञानचंद गुप्त, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, 1974, पृष्ठ 102
[19]. 'हिन्दी कहानी का इतिहास–2 : 1951–1975', गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ 16
[20]. 'कल्यानमन', मार्कण्डेय की कहानियाँ, मार्कण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002 पृष्ठ 191
[21]. 'बीच के लोग', मार्कण्डेय की कहानियाँ, मार्कण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002 पृष्ठ 495
[22]. 'हलयोग', मार्कण्डेय की कहानियाँ, मार्कण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002 पृष्ठ 74
[23]. 'मिथिलेश्वर की कहानियों में ग्रामीण यथार्थ', उद्धृत, डॉ. वर्षा मिश्रा, क्वालिटी बुक्स, कानपुर, 2004, पृष्ठ 3
[24]. 'भूदान', मार्कण्डेय की कहानियाँ, मार्कण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002 पृष्ठ 277
[25]. 'नई कहानी की मूल संवेदना, डॉ0 सुरेश सिन्हा, भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दिल्ली, 1966, पृष्ठ 166
[26]. 'धूमिल की श्रेष्ठ कविताएँ, पटकथा से', संपादक ब्रह्मदेव मिश्र एवं शिव कुमार मिश्र, पृष्ठ 99